International Journal of Academic Research and Development
ISSN: 2455-4197
Impact Factor: RJIF 5.22
www.academicsjournal.com
Volume 2; Issue 5; September 2017; Page No. 962-965

भक्ति विमर्श एवं कालिदास की दृष्टि

सुनील दत्त
शोधच्छात्र, पी०एच०डी०, संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू, जम्मू और कश्मीर, भारत।

प्रस्तावना

भक्ति ही एक ऐसा माध्यम है जिसको सुगमता से सभी कर सकते हैं और जिसमें सभी व्यक्तियों को अधिकार है। इस कलियुग में तो भक्ति के समान आत्मोद्धार के लिए कोई सुगम उपाय नहीं है क्योंकि ज्ञान, योग, तप, याग आदि इस समय सिद्ध होने बहुत कठिन हैं और इस समय इनके उपयुक्त सहायक सामग्री आदि साधन मिलने भी दुर्लभ हैं इसलिए मनुष्य को कटिबद्ध होकर केवल ईश्वर की भक्ति का ही साधना करने के लिए तत्पर होना चाहिए। भक्ति स्वयं में एक मनः स्थिति है। अनुभूति की इस अवस्था में व्यक्ति अपने भौतिक अस्तित्व को ईश्वर की दिव्यता में अनुप्रणित कर अभौतिक बना लेता है। भक्त सर्वात्मना ईश्वर की एकत्वानुभूति करता हुआ उसी में जगत के समस्त द्वैत को विलीन कर लेता है। भक्ति मन की एक वृत्ति अथवा भाव है, तथा ज्ञान एवं कर्म से स्वरूपतः भिन्न है, क्योंकि भक्ति में प्रेम के शाश्वत बन्धन द्वारा भक्त आदि से अन्त तक अपने व्यक्तित्व को स्वतन्त्र बनाये रखता है। भक्ति भाव के उदय होने पर भक्त अपनी समस्त इच्छाओं, वासनाओं एवं क्रियाकलापों को त्याग कर कर्त्तव्याचरण करता है, तथा एकमात्र प्रभु में अनुरक्त हो जाता है। विचार करके देखा जाए तो संसार में धर्म को मानने जितने लोग हैं उनमें अधिकांश लोग ईश्वर–भक्ति को ही पसंद करते है। ईश्वर क्या है? यह प्रश्न भी विचारणीय है, तथा भक्ति क्या है? जो सबके शासन करने वाले सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी हैं, न्याय और सदाचार जिसका नियम है, जो सबके साक्षी और सबको ज्ञान देने वाले है। जिनकी भक्ति से मनुष्य सम्पूर्ण, दुर्गुण, दुराचार और दुःखों से विमुक्त होकर परम पवित्र बन जाता है, जो अव्यक्त होकर भी जीवों पर दया करके जीवों के कल्याण एवं धर्म के प्रचार तथा भक्तों को आश्रय देने के लिए समय–समय पर अपनी लीला से देव, मनुष्य आदि सभी रूपों में व्यक्त होते है अर्थात् साकार रूप से प्रत्यक्ष प्रकट होकर भक्तजनों को उनको इच्छानुसार दर्शन देकर आह्लादित करते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि भक्ति किसका नाम है? महर्षि शाण्डिल्य ने कहा है – ''सा परानुरक्तिरीश्वरे'' ईश्वर में परम अनुराग अर्थात् प्रेम ही भक्ति है। इसके अतिरिक्त देवर्षि नारद ने भी अपने भक्तिसूत्र में कहा है – ''सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा'' अर्थात् उस परमेश्वर में अतिशय प्रेमरूपता ही भक्ति है तथा वह अमृत रूप है।

इस प्रकार अनेक मत–मतान्तर भक्ति के विषय में दृष्टिगोचर होते है जिनसे यह स्पष्ट होता है कि ईश्वर में परम प्रेम भक्ति है। भक्ति शब्द भज् पूर्वक् क्तिन् प्रत्ययान्त से निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है सेवा, विभाग, अनुरागादि।[1] भक्ति शब्द के आराधना, सेवा, भजन, विभाग, विश्वास, उपचार तथा आराध्यदेवता का नाम स्मरण, जपन एवं ध्यानादि अर्थ हैं। दूसरे शब्दों में कहा जाए भक्ति किसी व्यक्ति की अपने आराध्य के प्रति अनवरत स्नेह–प्रीति है विशेषतः भक्ति शब्द मात्र ईश्वर प्रेम के अर्थ में ही प्रयुक्त होता है। भक्ति के साधनों की अन्तिम सीमा है तथा प्रेम सेवा का फल है। जैसे वृक्ष की पूर्णता और गौरव फल आने पर ही है, इसी प्रकार भक्ति की पूर्णता और गौरव भगवान में परम प्रेम होने में ही है। प्रेम ही उसकी पराकाष्ठा है और प्रेम के ही लिए सेवा की जाती है। इसलिए वास्तव में भगवान् में अनन्य प्रेम का होना ही भक्ति है।

प्रभु की भक्ति में आस्था और रूप का तो कुछ भी मूल्य नहीं है। विद्या, धन, जाति तथा बल से सब मुख नहीं हैं एवं सदाचार और सद् गुण की तरफ भी भगवान् इतना ध्यान नहीं रखते वे केवलमात्र प्रेम को ही देखते है किसी ग्रन्थकार ने कहा है कि व्याध का कौन–सा अच्छा आचरण था? ध्रुव की आयु क्या थी? गजेन्द्र के पास कौन–सी विद्या थी? विदुर की कौन उत्तम जाति थी? यादवपति उग्रसेन का कौन–सा पुरुषार्थ था? सुदामा के पास कौन–सा धन था? भक्तिप्रिय माधव तो केवल भक्ति से ही सन्तुष्ट होते हैं, गुणों से नहीं।[2]

सदाचार और सद्गुण तो उस भक्त में भक्ति के प्रभाव से अनायास ही आ जाते हैं, इसलिए ईश्वर की भक्ति में सदाचार और सद्गुणों की इतनी प्रधानता नहीं है परन्तु इससे यह कभी नहीं मान लेना चाहिए कि ईश्वर की भक्ति में सदाचार और सद्गुणों की आवश्यकता ही नहीं है। जैसे बीमार व्यक्ति के लिए रोग की निवृत्ति में औषधि का सेवन प्रधान है और साथ ही साथ पथ्य की आवश्यकता रहती है, इसी प्रकार जन्म–मरण रूपी भाव रोग की निवृत्ति के लिए ईश्वर की भक्ति परमौषधि है और अच्छा आचरण और सद्गुण का सेवा पथ्य है।

भक्ति के मुख्यतः दो भेद है – एक साधन रूप, जिसको वैध और नवधा के नाम से भी कहा है और दूसरी साध्यरूप है, जिसको प्रेमा–प्रेमलक्षण आदि नामों से कहा है। इसमें नवधा साधनरूप है और प्रेम साध्य है। अब प्रश्न उठता है कि वैध भक्ति किसका नाम है? जिस भक्ति से स्वामी सन्तुष्ट हो उस प्रकार के भाव से भक्ति होकर उसकी आज्ञा के अनुसार आचरण करने का नाम वैध भक्ति है।

श्रीमद्भागवत में भी प्रह्लाद जी ने कहा है कि –

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणम् पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।[3]

अर्थात् भगवान् विष्णु के नाम रूप, गुण और प्रभावादि का श्रवण, कीर्तन, और स्मरण तथा प्रभु की चरण सेवा, पूजन, वन्दन, ईश्वर में दास भाव, सखाभाव और अपने को समर्पण कर देना यह नौ प्रकार की भक्ति है। तात्पर्य सबका प्रायः एक ही है कि स्वामी जिस भाव और आचरण से सन्तुष्ट हो, उसी प्रकार के भावों से भक्ति होकर उनकी आज्ञा के अनुकूल आचरण करना ही सेवा यानी भक्ति है।

अब यहाँ पर प्रत्येक भक्ति के विषय में विचार करना अनिवार्य है।

श्रवण

ईश्वर के प्रेमी भक्तों द्वारा कथित भगवान के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, लीला, तत्त्व और रहस्य की अमृतमयी कथाओं को श्रद्धा और प्रेमपूर्वक श्रवण करना एवं उन अमृतमयी कथाओं का श्रवण करके वीणा के सुनने से जैसे हरिण मुग्ध हो जाता है, वैसे ही प्रेम में मुग्ध हो जाना श्रवण भक्ति है। श्रवण भक्ति की प्राप्ति के लिए श्रद्धा और प्रेमपूर्वक महापुरुषों को साष्टांग प्रणाम, उनकी सेवा और उनसे नित्य निष्कपट भाव से प्रश्न करना और उनके बतलाये हुए मार्ग के अनुसार आचरण करने के लिए तत्परता से चेष्टा करना यह श्रवण भक्ति को प्राप्त करने के लिए तत्परता से चेष्टा करना यह श्रवण भक्ति को प्राप्त करने की प्रक्रिया है। गीता में भगवान् ने इसका वर्णन करते हुए कहा है कि हे अर्जुन! डस ज्ञान को तू समझ, श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ आचार्य के पास जाकर उनको भली भाँति दण्डवत् प्रणाम करने से, उनकी सेवा करने से और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करने से परमात्मतत्त्व को भली–भाँति जानने वाले वे ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्व ज्ञान का उपदेश करेंगे। इसी तरह का वर्णन भागवत पुराण में प्राप्त है।[4] महापुरुषों का संग दुर्लभ, अगम्य और अमोघ है इसलिए भगवत्प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों को सत्पुरुषों का संग अवश्य करना चाहिए ऐसा देवर्षि नारद जी का मानना है।[5]

कीर्तन

प्रभु नाम, रूप, गुण, प्रभाव, चरित्र, तत्त्व और रहस्य का श्रद्धा और प्रेमपूर्वक उच्चारण करते–करते शरीर में रोमांच, कण्ठावरोध, अश्रुपात, हृदय की प्रफुल्लता, मुग्धता आदि का होना, कीर्तन भक्ति है। किन्तु ये सब क्रियाएँ नाम के दस उपराधों को बचाते हुए दम्भरहित एवं शुद्ध भावना से स्वाभाविक होनी चाहिए। गीता में भगवान् ने कहा है कि यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरा भक्त होकर मुझको भजता है। तो वह साधु मानने योग्य है।[6] भागवत पुराण में भी भगवान् के केवल नाम और गुणों के कीर्तन से सब पापों का नाश एवं भवगत् प्राप्ति बतलायी है।[7] महर्षि पतंजलि कीर्तन भक्ति का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि उस ईश्वर का वाचक अर्थात् नाम ओंकार है तााि उस परमात्मा के नाम का जप और उसके अर्थ की भावना का चिन्तन करना चाहिए।[8]

स्मरण

जहाँ तक हो सके, एकान्त एवं पवित्र स्थान में सुखपूर्वक स्थिर, सरल आसन से बैठकर इन्द्रियों को विषयों से रहित करके कामना तथा संकल्प को त्याग कर प्रशान्त और वैराग्य युक्त चित्त से अथवा चलते फिरते, उठते–बैठते, खाते–पीते, सोते–सभी काम करते हुए भी स्वाभाविक शुद्ध और सरल भाव से भगवान के सगुण–निर्गुण तत्त्व को जानकर गुण और प्रभाव से चिन्तन करना, मन से उनके नाम का स्मरण करना स्मरण भक्ति है। स्मरण भक्ति द्वारा मनुष्य जो कुछ भी चाहे प्राप्त कर सकता है। श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण आदि सब ने एक स्वर से भगवत् स्मरण की बड़ी महिमा गयी है। यथा कठोपनिषद् में कहा है –

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो इच्छति तस्य तत्।।

अर्थात् ओंकार अक्षर ही ब्रह्म है यही परब्रह्म है, इसी ओंकार रूप अक्षर को जानकर जो मनुष्य जिस वस्तु को चाहता है, उसको वही मिलती है।[9]

पाद सेवन

भगवान् के दिव्य मंगल स्वरूप की धातु आदि की मूर्ति, चित्रपट अथवा मानस–मूर्ति के मनोहर चरणों का श्रद्धा पूर्वक दर्शन, चिन्तन, पूजन और सेवा करते–करते भगवत्प्रेम में तन्मय हो जाना ही 'पाद–सेवन' कहलाता है। श्री गंगा जी के जल को भगवान् का चरणोदक समझकर, प्रणाम, पूजन, स्नान–पानादि के द्वारा उसका सेवन करना आदि के द्वारा उसका सेवन करना तथा ममता, अहंकार और अभिमान आदि का नाश होकर प्रभु के चरणों में अनन्य प्रेम की प्राप्ति होने के उद्देश्य से पाद सेवन भक्ति कही जाती हैं अध्यात्म रामायण पाद सेवन भक्ति का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि हे जगदीश्वर। आपके चरण–कमलों में लगे हुए रजःकणों का स्पर्श पाकर आज मैं कृतार्थ हो गयी। अहो! टापके जिन चरणारविन्दों का ब्रह्मा, शंकर आदि सदा चित्त लगाकर अनुसन्धान किया करते हैं, आज मैं उन्हीं का स्पर्श कर रही हूँ।[10]

अर्चन

भगवान् के भक्तों से सुने हुए शास्त्रों में पढ़े हुए, मन को अच्छे लगने वाले किसी भी भगवान् के स्वरूप का बाह्य सामग्रीयों से तथा यथायोग्य नानाविध उपचारों से श्रद्धापूर्वक उनका सेवन पूजन करना और उनके तत्त्व को, रहस्य तथा प्रभाव को समझ–समझ कर प्रेम मुग्ध होना अर्चन भक्ति है। भागवत पुराण में इसके महत्त्व का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि –

स्वर्गापवर्गयोः पुंसां रसायां भुवि सम्पदाम्।
सर्वासामपि सिद्धीनां मूलं तच्चरणार्चनम्।।

अर्थात् भगवान् के चरणों का अर्चन–पूजन करना जीवों को स्वर्ग और मोक्ष का एवं मर्त्यलोक और पाताल लोक में रहने वाली समस्त सम्पत्तियों और सिद्धियों का मूल है।[11]

वन्दन

भगवान् के शास्त्र वर्णित स्वरूप, भगवान् के नाम, भगवान् की धातु आदि की मूर्ति, चित्र अथवा मानसिक मूर्ति को शरीर अाि‍वा मन से श्रद्धा सहित साष्टांग प्रणाम करना अथवा समस्त चराचर भूतों को परमात्मा का स्वरूप समझकर श्रद्धा–पूर्वक शरीर या मन से प्रणाम करना और ऐसा करते हुए भगवत्प्रेम में मुग्ध होना वन्दन भक्ति है। गीता में अर्जुन भगवान् से कहता है कि आपको आगे से तथा पीछे से भी नमस्कार हो अर्थात् आपको सब ओर से नमस्कार हो।[12] भागवत पुराण में भी वन्दन भक्ति का वर्णन प्राप्त होता है कि हे प्रभो! जो सर्वदा ध्यान करने योग्य हैं तिरस्कार को नष्ट करने वाले है, समस्त मनोरथ पूर्ण करने वाले हैं, तीर्थों के आधार है जो शरणागतों की रक्षा करने में प्रवीण हैं तुम्हारे उन चरण कमलों की मैं वन्दना करता हूँ।[13]

दास्य

भगवान् के गुण, तत्त्व, रहस्य और प्रभाव को जानकर श्रद्धा और प्रेमपूर्वक उनकी सेवा करना तथा उनकी आज्ञा का पालन करना दास्य भक्ति है। प्रभु के रहस्य को समझने वाले प्रेमी भक्तों के संग और सेवन से दास्य भक्ति प्राप्त होती है। गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार दास्य भाव के विना भव–सागर से उद्धार ही नहीं हो सकता है यथा –

सेवक सेव्य भाव विनु भव न तरिअ उरगारि।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत बिचारि।।

सख्य

प्रभु के प्रभाव को, रहस्य तथा महिमा को समझकर परम विश्वासपूर्वक मित्र भाव से उनकी रूचि के अनुसार बन जाना, उनमें अनन्य प्रेम करना और उनके गुण, रूप और लीला पर मुग्ध होकर नित्य–निरन्तर प्रसन्न रहना सख्य भक्ति है। भागवत पुराण में सख्य भक्ति का विवेचन करते हुए कहा गया है कि उन नन्द गोप के ब्रज में रहने वाले लोगों का भाग्य धन्य है। जिनका मित्र परमानन्द परिपूर्ण सनातन ब्रह्म है।[14] अर्जुन के सख्यभाव की भगवान् स्वयं घोषणा करते हैं कि तुम मेरे भक्त तथा सखा हो।[15]

आत्म–निवेदन

ईश्वर के स्वरूप को समझकर ममता और अहंकार रहित होकर अपने तन, मन, धन, जन रहित अपने आप को और सम्पूर्ण कर्मों को श्रद्धा और परम प्रेमपूर्वक परमात्मा को समर्पण कर देना आत्म–निवेदन भक्ति है।

नारद भक्ति सूत्र में कहा गया है कि श्री गोपियाँ, महाराजा बलि आदि इस आत्म–निवेदन भक्ति के परम भक्त हुए हैं। ऐसे भक्त को अपने ऊपर धारण कर धरणी धन्य और सनाथ होती है, पितर गण प्रमुदित हो जाते हैं और देवता नाचने लगते हैं।[16]

संस्कृत काव्य साहितय में अनेक कवियों ने भक्ति की धारा को अनवरत प्रवाहित करने का कार्य किया है। उन कवियों में महाकवि कालिदास मूर्धन्य माने जाते हैं। जिन्होंने अपने महाकाव्यों एवं नाटकों में इस भक्ति की धारा को आगे प्रवाहित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। कालिदास किस ईश्वर की भक्ति से ओत–प्रोत थे? यह प्रश्न भी विचारणीय है। यह प्रश्न विवाद का विषय विद्वानों के लिए आदि काल से रहा है। एक जनश्रुति के आधार कालिदास की पत्नी विद्योत्तमा ने अपने पति को अपमान के साथ भवन से बाहर निकाल दिया और मूर्ख कालिदास को अपनी पत्नी के व्यवहार से इतना दुःखी हुआ कि वह काली मन्दिर में जाकर आत्महत्या करने के लिए उतारू हो गया। उसके जन्मान्तर के अदृष्ट की प्रबलता भगवती काली ने प्रसन्न होकर 'वरं ब्रूहि' कहा। उस मूर्ख ने कवित्वं कहने पर वह तत्क्षण निखिल शास्त्र होकर फिर अपनी पत्नी के पास गया। इस प्रकार राजकुमारी विद्योत्तमा के पूर्वाल्लिखित मूर्ख पति ही भगवती काली के अनुग्रह से 'कालिदास' नाम वाले जगद् विख्यात महाकवि हो गये।[17] अतः इसके अनुसार कालिदास को काली देवी का भक्त माना जा सकता है।

इसके अलावा कालिदास महाकाव्य में शैव मन्दिर की स्पष्ट झलक देखने को मिलती है। कुमारसंभव महाकाव्य में कालिदास ने भगवान की शंकर की भक्ति की जो धारा प्रवाहित की वह अद्वितीय है। इसमें शंकर और पार्वती के विवाह तथा कार्तिकेय के जन्म की कथा का वर्णन किया गया है।

कालिदास ने पार्वती के द्वारा शिव की भक्ति के लिए अर्चन और आत्म–निवेदन सुन्दर उद्धरण प्रस्तुत किया है। पार्वती भगवान् शंकर को पति रूप में प्राप्त करने के लिए उनके पूजन के लिए फूलों को तोड़कर लाती वेदिका को अच्छी तरह साफ रखती तथा नित्यकर्म के लिए जल तथा कुशों को ले जाती। इस प्रकार शंकर जी के मस्तक पर स्थित चन्द्रमा की अमृतमयी किरणों से अपनी थकान मिटाती हुई वह प्रतिदिन उनकी श्रद्धा से सेवा–शुश्रूषा करती रहती थी इस प्रकार कुमारसंभव में भक्ति के विभिन्न रूपों का सुंदर चित्रण कालिदास द्वारा वर्णित है।[18]

रघुवंश महाकाव्य में कालिदास ने भक्ति का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत किया है। जहाँ कालिदास रघुवंश के माध्यम से वैष्णव भक्ति का व्याख्या कर रहे हैं परन्तु उसके आदि यद्य में ही वह भगवान् शंकर की स्तुति करने लगते हैं और कहते है कि शिव तथा पार्वती को वाणी तथा अर्थ की सिद्धि के लिए नमस्कार करता हूँ।[19] इससे स्पष्ट होता है कि कालिदास रघुवंश काव्य के द्वारा भी शैव भक्ति का सन्देश सर्वप्रथम देना चाहते है और इससे वह पीछे भी नहीं हटते हैं।

मेघदूत में कालिदास ने शैव भक्ति का स्पष्ट उल्लेख किया है पूर्व मेघ में एक प्रसंग में वह मेघ को सम्बोधित करते हुए कहते है कि सन्ध्या काल में महादेव की पूजा में प्रशंसनीय नगाड़े के काम को सम्पादित करते हुए तुम अपने कुछ गम्भीर गर्जनों के अखण्ड फल को प्राप्त कर लोगे। इससे प्रतीत होता है कि कालिदास मेघ द्वारा शंकर की अर्चना करवाके अपनी भक्ति का स्पष्ट संकेत देना चाहते हैं।[20]

कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक में अपने इष्ट की भक्ति को उपस्थापित करने का कार्य किया है। अभिज्ञानशाकुन्तल की मूल कथा महाभारत से सम्बन्धित है। इसमें शाकुन्तल और दुष्यन्त की प्रणय कथा वर्णित हैं परन्तु उसमें भी वह अपने अपने अष्टमूर्ति आराध्य देव भक्ति का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत करते है। वह कहते हैं कि आठ मूर्तियों से युक्त भगवान् शंकर आप सब दर्शकों की रक्षा करें।[21] इससे स्पष्ट होता है कि भगवान् शंकर ही भक्ति के द्वारा ही कालिदास अपने ग्रन्थों की पूर्णता करते हैं।

अब यह प्रश्न उठता है कि क्या कालिदास भगवती काली के भक्ति थे अथवा शिव के भक्ति थे? कालिदास के ग्रन्थों में उनका भगवती काली का भक्त होने का स्पष्ट उल्लेख कहीं भी प्राप्त नहीं होता है परन्तु उनका भगवान् शंकर भक्त और उनकी भक्ति का सुन्दर स्पष्ट वर्णन उनके ग्रन्थों प्राप्त होता है। कालिदास ने अपने ग्रन्थों में न केवल कीर्तन भक्ति द्वारा भक्ति की धारा को प्रवाहित करने का कार्य किया है अपितु नवधा भक्ति के सभी रूपों को काव्यों एवं नाटकों में संयोजने का कार्य किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची

1. हलायुधकोष, पृष्ठ 487
2. व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का
   का जातिर्विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषम्
   कुब्जायाः कमनीयरूपमधिकं किं तत्सुदाम्नो धनं
   भक्त्या तुष्यति केवलं नच गुणैर्भक्ति प्रियो माधवः।। नवधा भक्ति, पृष्ठ 7
3. श्री मद्भागवत पुराण, 7/5/23
4. (क) तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवाया।
   उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।। भगवद्गीता 4/3
   (ख) रहूगणैतत्तपसा न याति न चेज्यया निर्वपणाद गृहाद्वा।
   नच्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यैर्विना महत्पादरजोऽभिषेकम्।। श्रीमद्भागवत पुराण 5/12/12
5. महत्संगस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च। नारदसूत्र 39
6. अपि चेत्सुदुराचारो भजते मानन्यभाक्।
   साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।। गीता 9/30
7. ब्रह्महा पितृहा गोध्नो मातृहाऽऽचार्यहाघवान्।
   श्वादः पुल्कसको वापि शुद्ध्येरन् यस्य कीर्तनात्।। श्रीमद्भागवत पुराण 6/13/8
8. तस्य वाचकः प्रणवः।
   तज्जपस्तदर्थभावनम्।। योगसूत्र 1/27-28
9. कठोपनिषद् 1/2/16
10. अहो कृतार्थास्मि जगन्निवास ते पादाब्जसंलग्नरजः कणादहम्।
    स्पृशामि यत्पद्मन्जशंकरादिभिर्विमृग्यते रन्धितमानसैः सदा।। अध्यात्म रामायण 1/5/43

11. भागवत पुराण, 10/81/19
12. नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व।
    अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः।। गीता 11/40
13. श्रीमद्भागवत पुराण 11/5/33
14. अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्।
    यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्।। श्रीमद्भागवत पुराण 10/14/32
15. भक्तोऽसि मे सखा चेति। गीता 4/3
16. मोदन्ते पितरो नृत्यन्ति देवताः सनाथा चेयं भूर्भवति। नारदभक्ति सूत्र 71
17. मेघदूतम्, भूमिका, पृष्ठ 3
18. अवचितवलिपुष्पा वेदिसम्मार्गदक्षा नियमविधिजलानां बर्हिषां चोपनेत्री।
    गिरिशमुपचचार प्रत्यहं सा सुकेशी नियमितपरिखेदा तच्छिरश्चन्द्रपादैः।। कुमारसंभवम् 1/60
19. वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
    जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।। रघुवंशम् 1/1
20. अप्यन्यस्मि? जलधर। महाकालमासाद्य काले
    स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः।
    कुर्वन्संध्याबलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीया
    मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम्।। मेघदूतम् 34
21. सा सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हवि र्या च होत्री
    ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
    यामाहुः सर्वबीज प्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
    प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः।।
    अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1/1